'नई तालीम' के सामयिक तथा विचारात्मक संदर्भ[1]

अनिल सेठी

भाषान्तर : कुसुम बाँठिया

हर राष्ट्र के इतिहास में ऐसे क्षण आते हैं जब अपनी विरासत के किसी अंश के विशेष महत्व को पहचानकर लोग उसकी पुनर्व्याख्या तथा पुनर्गठन करके, उसे वर्तमान के साथ ही भविष्य के लिए भी एक नया रूप देते हैं। गाँधीजी की 'नई तालीम' की संकल्पना को लेकर सुजित सिन्हा और पल्लवी वर्मा पाटिल लगभग दस वर्षों से ठीक यही काम कर रहे हैं।[2] जब पल्लवी ने मुझसे इस विशेषांक के लिए कुछ लिखने का आग्रह किया तो मुझे लगा कि मुझे 'नई तालीम' को उसके सामयिक तथा विचारात्मक संदर्भों में अवस्थित करने का प्रयास करना चाहिए। विचारात्मक संदर्भ से मेरा आशय है- गाँधी के अन्य विचारों से, बल्कि उनकी संपूर्ण विचारणा से, उनके शिक्षा पद्धति संबंधी प्रारूप का संबंध। नई तालीम के बारे में बहुत कुछ लिखा जा चुका है और इसमें से कुछ लेखों में गहन अंतर्दृष्टि का भी परिचय मिलता है।[3] फिर भी ऐसा लेखन बहुत ज़्यादा नहीं है जिसमें 'बुनियादी तालीम' (गाँधी के ही शब्द) को उनकी दृष्टि (vision) के वृहत्तर संदर्भ में रखकर देखा गया हो या उसे 'अभयदानम', 'प्रबुद्ध अराजकता', सत्य (या फिर ज़िन्दगी) के क्रांतिकारी प्रयोग, या फिर डी-स्कूलिंग जैसे बीजरूप विचारों से जोड़ा गया हो। गाँधी ने अद्‌भुत और सूक्ष्म कारीगरी से अपने जीवन और सोच की जो चादर बुनी थी, 'नई तालीम' को हमें उसी के ताने-बाने के एक हिस्से के रूप में देखना चाहिए। इस लेख का आरंभ सामयिक संदर्भ से हो रहा है, पर जल्दी ही यह 'नई तालीम' और गाँधी की आदर्श जीवनाचार संबंधी बुनियादी अवधारणाओं के आपसी रिश्तों पर आ जाएगा।

---

1. इस लेख के अनुवाद के लिए मैं डॉ. कुसुम बाँठिया का आभारी हूँ। इनके सटीक अनुवाद और दोनों भाषाओं की लय पर इनकी पकड़ का मैं हमेशा से प्रशंसक रहा हूँ। मेरी पत्नी शिखा सेठी की बाज़ जैसी नजरों से लेख के प्रूफ़ गुज़रे। उनके साथ इस लेख के विचारों का विमर्श मैं लंबे अर्से से करता आया हूँ। लेख के लिखे जाने के दौरान पल्लवी वर्मा पाटिल, प्रोफेसर फ़राह फ़ारूक़ी और डॉ. उमेश झा से हुई विचार-चर्चाओं के लिए मैं इन सभी का आभारी हूँ।

2. सुजित सिन्हा बेंगलुरू की अज़ीम प्रेमजी युनिवर्सिटी में विज़िटिंग प्रोफ़ेसर हैं और पल्लवी वर्मा पाटिल भी उसी युनिवर्सिटी में पढ़ाती हैं। इन दोनों के कार्य के लिए 'पढ़ाने' का पारंपरिक अर्थ बिल्कुल नाकाफ़ी है। ये वकीलों और डॉक्टरों की तरह अपने पेशे की प्रैक्टिस - धुंआधार प्रैक्टिस - करते हैं। इन दोनों का 'पढ़ाना' केवल अपने संस्थान की कक्षाओं में जाकर अध्यापन तथा उससे सम्बद्ध कार्यों तक सीमित नहीं है। ये इससे अतिरिक्त भी शिक्षा-सुधार, ज़मीनी गतिविधियों, ग्रामीण पाठशालाओं, नई तालीम की नवीन पाठशालाओं आदि को लेकर अत्यंत सक्रिय हैं।

3. उदाहरण के लिए देखिए, मार्जरि साईक्स, द *स्टोरी ऑफ़ नई तालीमः* फिफ्टी यीरज ऑफ़ एडुकेशन ऐट सेवाग्राम, इन्डिया (दिल्ली, एन.सी.ई.आर.टी, 2009); कृष्ण कुमार, 'लिस्निंग टू गाँधी', रजनी कुमार, अनिल सेठी एवं शालिनी सिक्का (संपादक), स्कूल, सोसायटी, नेशन : पॉप्युलर एसेज़ इन एडुकेशन (दिल्ली, ओरिएन्ट लोंगमेन, 2005); हेनरी फ़ैग, बैक टू द सोर्सेज़ः ए स्टडी ऑफ़ गाँधीज बेसिक एडुकेशन (दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट, 2002)

सामयिक संदर्भ

ब्रिटिश शासन के अंतर्गत 1937 में भारत के कई राज्यों में कांग्रेस की सरकारें बनीं। अब देश की शैक्षणिक व्यवस्था के विस्तार और पुनरुज्जीवन की ज़िम्मेदारी उन पर आ गई थी। पर सभी प्रांतों में आर्थिक संसाधनों की कमी थी और मंत्रिमंडलों के लिए शिक्षा पर ख़र्च होने वाली राशि को बढ़ाना संभव नहीं था। चूँकि आबकारी का महकमा भी प्रांतीय मंत्रिमंडलों के अधिकार क्षेत्र में आता था, कांग्रेस के सामने एक विकल्प यह था कि आबकारी से हुई आय को विद्यालयों के संचालन की बेहतरी के लिए उपयोग में लाए। मगर कांग्रेस मद्य निषेध को राष्ट्रीय नीति बनाने के लिए प्रतिबद्ध थी। पार्टी के मंत्रियों की दुविधा का बयान जी रामनाथन ने इस प्रकार किया हैः

> यदि मद्य निषेध लागू किया जाता तो एक ओर तो राजस्व की हानि होती और दूसरी ओर इसे लागू करने की व्यवस्था के लिए अतिरिक्त ख़र्च भी करना पड़ता। संसाधनों पर इस दोहरी मार के बाद मंत्रिमंडल के हाथों में शिक्षा जैसे राष्ट्र निर्माणकारी उद्देश्यों के लिए बहुत ही अपर्याप्त राशि रह जाती। इस प्रकार कांग्रेस के आगे दो ही रास्ते थे - या तो शिक्षा के विकास से जुड़े कार्यों को स्थगित करके मद्य निषेध को आगे बढ़ाए या मद्य निषेध को मुल्तवी करके आबकारी से होने वाली आय का नए विद्यालयों के निर्माण और अध्यापकों के वेतन में उपयोग करे। ज़रूरत कोई ऐसा समाधान खोजने की थी जिसके तहत एक ही समय में दोनों ही आदर्शों पर चला जा सके। दूसरे शब्दों में एक ऐसी शिक्षा नीति का विकास ज़रूरी था, जिसके अंतर्गत वित्तीय साधनों की बहुतायत के बिना भी विद्यालयों का विकास हो सके।[4]

जैसे पहले भी प्रायः होता आया था, गाँधी ने इस चुनौती का जो समाधान सुझाया, वह रचनात्मक तो था पर साथ ही विवादास्पद भी। उनका समाधान आमूल परिवर्तनकारी थाः

1. प्रारंभिक (प्राइमरी) शिक्षा 7 से 14 वर्ष या अधिक आयु के बच्चों के लिए हो। आज के मैट्रिक्युलेशन के समकक्ष इस पाठ्यक्रम से अंग्रेज़ी को बाहर रखा जाए और हस्तशिल्प को जोड़ा जाए।
2. लोगों के मुख्य-मुख्य पेशों में से ही हस्तशिल्पों का चुनाव हो।
3. समस्त शिक्षण हस्तशिल्पों से ही सहसंबद्ध हो।
4. इस प्रकार की शिक्षा उत्पादक तथा स्वनिर्भर हो।[5]

इसमें से अंतिम प्रस्ताव में विद्यार्थियों की दस्तकारी के उत्पादों (की बिक्री) के माध्यम से स्कूलों को आत्मनिर्भर बनाने की सिफ़ारिश की गई थी। इन सभी प्रस्तावों का विरोध हुआ, विशेषकर अंतिम प्रस्ताव का। यहाँ तक कि 1937 में वर्धा में स्वयं गाँधी की अध्यक्षता में हुए एक सम्मेलन में भी इस योजना को संपूर्ण समर्थन नहीं मिल पाया। वहाँ गाँधी के सुझावों को नरम करते हुए केवल यही प्रस्ताव पारित हो सका 'कि सम्मेलन को आशा है कि शिक्षण की यह पद्धति आगे चलकर शिक्षकों के वेतन की व्यवस्था कर पाएगी'। शिक्षाशास्त्रियों को आशंका थी कि गाँधीवादी विद्यालयों में पेशा-केंद्रित शिक्षा विद्यार्थियों को कहीं बाल मज़दूर न बना छोड़े। मगर फिर भी 'बुनियादी तालीम' को कुछ हद तक स्वीकृति भी मिली। उदाहरण के लिए उस समय की एक गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया रिपोर्ट में (जिसका मसविदा उस समय के शिक्षा आयुक्त जॉन सार्जन्ट ने तैयार किया था) इसकी तर्कसंगति को स्वीकार किया गया।

---

4. जी. रामनाथन, *एडुकेशन फ़्रॉम डूई टू गाँधी* : द थ्योरी ऑफ बेसिक एडुकेशन (बम्बई 1962) पृ. 3-4। मौजूदा लेख में 'नई तालीम' के सामयिक संदर्भ के बारे में हुई चर्चा का काफ़ी हिस्सा अनिल सेठी, 'एडुकेशन फ़ॉर लाईफ, थ्रू लाईफः ए गाँधियन पेराडाईम'- क्रिस्टोफ़र विन्च, फ़र्स्ट महात्मा गाँधी मेमोरियल लेक्चर - 2007 (दिल्ली एन.सी.ई.आर.टी. 2007) में भी मिलेगा।

5. जी. रामनाथन, *एडुकेशन फ़्रॉम डूई टू गांधी* : द थ्योरी ऑफ़ बेसिक एडुकेशन (बम्बई 1962) पृ. 5।

संपूर्ण देश के स्तर पर 'बुनियादी तालीम' की योजना को रूप देने के लिए वर्धा सम्मेलन में एक कमिटी का गठन हुआ जिसका अध्यक्ष ज़ाकिर हुसैन को बनाया गया। और गाँधी तो हमेशा अपने समय के ज्वलंत प्रश्नों पर जनता से विचार-विमर्श करने को उद्यत रहते ही थे। उन्होंने जुलाई 1937 से ही *हरिजन* में अपने शिक्षा संबंधी दृष्टिकोण को लेखबद्ध करना शुरू कर दिया था। जनवरी 1948 में उनकी मृत्यु तक उनका यह क्रम ज़ारी रहा।

यह बात हम सभी जानते हैं कि शिक्षा से गाँधी का नाता नया नहीं था। 1937 और उसके बाद वे जो तर्क, जो सुझाव रखते रहे, उनका मंथन उनके दिल और दिमाग में - गाँधी की ज़बान में उनके 'सीने' में - लगभग चालीस वर्ष से चलता आ रहा था। उन्होंने डरबन के फ़ीनिक्स आश्रम (1897-1904) और जोहान्सबर्ग के टॉल्सटाय फार्म (1911-1913) में शिक्षा संबंधी प्रयोग किए थे और शिक्षा के बारे में 1909 में *हिंद स्वराज* में लिखा था।[6] इस प्रकार अपनी उम्र के आख़िरी दशक में उन्होंने जिन विचारों को अभिव्यक्ति दी उनमें न केवल उनके प्रारंभिक अनुभवों का निचोड़ था, बल्कि शांति निकेतन, चेन्नई के बेंटिक गर्ल्स हाईस्कूल, और सेवाग्राम तथा वर्धा के ग्रामीण पाठशाला एवं अध्यापकों के प्रशिक्षण केंद्रों की जानकारी का भी सार था।[7]

1938 में ज़ाकिर हुसैन कमिटी ने पाया कि 'बच्चों और बड़ों के तन, मन और चेतना[8] में जो कुछ श्रेष्ठ है, उसे समग्र रूप से बाहर लाने के लिए' यह 'नई तालीम' बुनियाद का काम करेगी। कमिटी का निष्कर्ष था कि इस लक्ष्य का संधान दस्तकारी केंद्रित शिक्षा के माध्यम से होना चाहिए। किसी भी शिल्प के सीखने में कई प्रकार के ज्ञान की संभावनाएं सामने आती हैं। इस शिक्षा का उद्देश्य होगा, उन संभावनाओं को - सहज, स्वाभाविक रूप से - यथासंभव अधिक से अधिक अनुशासनों या फिर विषयों से जोड़ना। ऐसी शिक्षा से ऐसे 'सहकारी समुदायों' के गठन में मदद मिलेगी जिनमें 'बचपन और किशोरावस्था के लचीले वर्षों में बच्चों की संपूर्ण गतिविधियों में समाज-सेवा का उद्देश्य ही प्रमुख होगा'।[9] यहाँ मैं 'नई तालीम' की प्रमुख विशिष्टताओं की चर्चा इससे ज़्यादा नहीं करूंगा।[10]

विचारात्मक संदर्भ

विचारात्मक संदर्भ के बारे में मेरा यही निवेदन है कि गाँधी ने 'नई तालीम' की रूपरेखा में अपने कुछ क्रांतिकारी विचारों को हालांकि व्यवस्थित रूप से स्थान नहीं दिया, पर उनकी शिक्षा संबंधी दृष्टि (vision) के केंद्र में वे विचार उपस्थित हैं। उनके बिना 'नई तालीम' क्रियमाण हो ही नहीं सकती। 'बुनियादी तालीम' के बारे में भरपूर सामग्री उपलब्ध होने के बावजूद मुझे एक भी प्रबंध ऐसा नहीं मिला जिसमें गाँधी के शैक्षणिक सिद्धांतों का उनके बाकी दर्शन से, शिक्षा के क्षेत्र से भिन्न प्रतीत होने वाले उनके जीवनादर्शों से समाकलन किया गया हो। यह बात तो तब है जबकि विद्वान

---

6. देखिए मो.क.गाँधी 'एडुकेशन', एन्टनी जे. परेल (संपादक), गाँधी : 'हिन्द स्वराज' एण्ड अदर राईटिंग्ज़ (केम्ब्रिज, केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1997), पृ. 100-106 में: मार्जरि साइक्स, 'द सोइंग ऑफ द सीड', द स्टोरी ऑफ नई तालीमः फ़िफ्टी यीरज़ ऑफ़ एडुकेशन ऐट सेवाग्राम, इन्डिया (दिल्ली), एन.सी.ई.आर.टी., 2009), पृ. 7-13।

7. इन संस्थाओं में हुए कार्यों में विचारों का बड़े पैमाने पर परस्पर आदान-प्रदान हुआ। देखिए मार्जरि साइक्स, 'द सोइंग ऑफ द सीड', द स्टोरी ऑफ़ नई तालीम : फ़िफ्टी यीरज़ ऑफ़ एडुकेशन ऐट सेवाग्राम, इन्डिया (दिल्ली), एन.सी.ई.आर.टी, 2009); एवं हेनरी फ़ैग, बैक टू द सोर्सेज़ : ए स्टडी ऑफ़ गाँधीज़ बेसिक एडुकेशन (दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट 2002)।

8. मो.क.गाँधी, *हरिजन*, 31 जुलाई 1937।

9. बेसिक नेशनल एडुकेशन : रिपोर्ट ऑफ़ द ज़ाकिर हुसैन कमिटी एण्ड द डिटेल्ड सिलेबस (सेगांव) हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, 1938, पृ0 38।

10. अनिल सेठी, 'एडुकेशन फ़ॉर लाईफ़, थ्रू लाईफ : ए गांधियन पेराडाईम' - क्रिस्टोफ़र विन्च, फर्स्ट महात्मा गाँधी मेमोरियल लेक्चर-2007 (दिल्ली एन.सी.ई.आर.टी. 2007), पृ. 1-11 में मैंने इस विषय में विवेचन किया है।

मानते आए हैं कि गाँधी के विचार अत्यंत सुसंबद्ध हैं।[11] इस तरह की संबद्धताओं के अन्वेषण की भूमिका के तौर पर मैं आपके आगे चार अवधारणाएं रखता हूँः '(अहिंसक) निर्भयता', 'प्रबुद्ध अराजकता', वह निर्णायक अंतर जो गाँधी 'संप्रदायबद्ध धर्म' और 'बुनियादी नैतिकता' के बीच देखते थे, और एडुकेशन तथा स्कूलिंग[12] के बीच का अंतर मैं दिखला रहा हूँ कि विचारों के ये अवधारणात्मक औज़ार ही किस तरह 'नई तालीम' के संचालन की धुरी हैं।

अभयदानमः

'अभयदान' की अवधारणा गाँधी को बहुत प्रिय थी। शायद गाँधी को लगता था कि यह सर्वश्रेष्ठ उपहार है जो किसी को दिया जा सकता है - ऐसा उपहार जो व्यक्ति भी और समाज भी एक दूसरे को दे सकते हैं। एक उक्ति याद आ रही है जो 18वीं सदी के महान दार्शनिक वॉल्टेयर के नाम से प्रायः (शायद ग़लती से) उद्धृत की जाती हैः 'आपकी बात से मैं पूरी तरह असहमत हूँ, पर आपके अपनी बात कहने के अधिकार की रक्षा के लिए मैं अपनी जान भी दे दूँगा'।[13] गाँधी की 'अभयदान' की अवधारणा और वॉल्टेयर के कथन की अर्थध्वनि में कुछ अंतर है और दोनों के संदर्भ-क्षेत्र भिन्न हैं। मगर दोनों अर्थछायाओं के परस्पर मेल से एक श्रेष्ठ संवादपरक, उदार शासन व्यवस्था का परकोटा अवश्य खड़ा किया जा सकता है। शिक्षा संस्थाओं जैसे रचनात्मक संस्थानों के फूलने-फलने के लिए भी यह सुरक्षा घेरा बहुत जरूरी है। गाँधी निर्भयता को दैवीय गुणों में सर्वोच्च मानते थे - 'अन्य श्रेष्ठ गुणों के विकास के लिए अपरिहार्य'।[14] उनका सवाल था, 'निर्भयता के बगैर कोई सत्य की खोज या प्रेम का पोषण कैसे कर सकता है?'[15] अगर शिक्षा का कार्य सत्य की तलाश और प्रेम का पोषण है तो किसी भी विद्यालय के संचालन या किसी भी तालीम की व्यवस्था के लिए 'अभयदान' एक अनिवार्य शर्त बन ही जाता है।

---

11. उदाहरण के लिए, देखिए अकील बिलग्रामी, 'गाँधी, द फ़िलॉस्फर, सेक्युलरिज़्म, आयडेंटिटी, एण्ड एन्चॉटमेंट (रानीखेत, परमानेंट ब्लैक, 2014), पृ. 101-102।

12. अनुवादक की टिप्पणी: मार्जरि साइक्स ने शिक्षण पद्धति के दो प्रकारों का उल्लेख किया हैः एडुकेशन (Education) के अंतर्गत सीखने की प्रक्रिया शिक्षार्थी की प्रकृति, प्रवृत्ति, रुचि और क्षमता से निर्धारित होती है। उस पर सीखने या सफल होने का कोई ऊपरी दबाव नहीं होता और वह अपनी मनोनुकूल दिशा में विकास के लिए स्वतंत्र होता है। स्कूलिंग (Schooling) के अंतर्गत शिक्षण संबंधी गतिविधियाँ एक निर्धारित ढाँचे के अंदर एक बने-बनाए पाठ्यक्रम के ज़रिए तमाम भिन्न-भिन्न प्रवृत्ति और क्षमता वाले शिक्षार्थियों पर समान रूप से ऊपर से आरोपित होती हैं। अनुवाद करते समय Education का स्वाभाविक शब्दानुवाद 'शिक्षा' ही प्रतीत हुआ किंतु हिंदी में इस शब्द के अनेक भाषागत, सांस्कृतिक और वैचारिक आसंग हैं, जो साइक्स की संकल्पना के अंतर्गत नहीं आते। समस्या यह थी कि Education का अनुवाद यदि 'शिक्षा' किया जाए तो वे तमाम आसंग साइक्स की संकल्पना को समझने में ख़लल डाल सकते हैं। अतः लेखक-अनुवादक के आपसी मशविरे में यह तय हुआ इस लेख में साइक्स के दिए हुए अंग्रेज़ी नामों को ही तकनीकी शब्दावली के तौर पर ले लिया जाए। इनके अतिरिक्त आगे चलकर इसी संदर्भ में साइक्स की 'de-schooling' (de-schooling : जिसका आशय है, पारंपरिक विद्यालय-व्यवस्था के प्रचलित दोषों से मुक्त स्थिति) की संकल्पना के लिए भी अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोष से बचने के लिए, उन्हीं के द्वारा प्रयुक्त अंग्रेज़ी शब्द नागरी लिपि में अपना लिया गया है। लेख में आगे इन संकल्पनाओं, तथा इनके द्वारा शिक्षण की प्रकृति और प्रभाव के निर्धारण पर विस्तार से विचार किया जा रहा है।

13. यह कथन प्रायः वॉल्टेयर (फ्रांसवा-मारी आगुए, 1694-1778) के नाम से उद्धृत किया जाता है। यहाँ यह जिस रूप में प्रस्तुत हुआ है, वह शायद ईवलिन बिएट्रिस एलिस हॉल (1868-1956) की एस.जी. टेलेनटायर के छद्मनाम से छपी पुस्तक *द फ़्रेंड्स ऑफ़ वॉल्टेयर* (1906) से लिया गया है। इस पुस्तक में इस कथन का श्रेय वॉल्टेयर को दिया गया है।

14. मो.क.गाँधी, *यंग इंडिया*, 11 सितंबर 1930, पृ. 1-2। गीता में निर्भयता को सर्वोच्च दैवी गुण मानने वाले श्लोक पर गाँधीजी का ध्यान बहुत जल्दी चला गया था। 'मेरी राय में... निर्भयता पूरी तरह से प्रथम स्थान पाने योग्य है।' इसी तरह सिख परम्परा में भी इसे देवत्व का गुण माना गया है और जपजी साहब के मूल मंत्र में इसी रूप में इसका उल्लेख हुआ है।

15. मो.क. गाँधी, *यंग इंडिया*, 11 सितंबर 1930, पृ. 1-2

विद्यालय या तालीम अभय - निर्भयता के स्थान होने चाहिए। वहाँ न हिंसा हो, न शारीरिक दंड - हरगिज़ नहीं। वहाँ उम्र और हैसियत पर आधारित पदानुक्रम - ऊँची-नीची श्रेणियाँ भी नहीं होनी चाहिए, न बौद्धिक या सांस्कृतिक आधार पर बनी श्रेणियाँ। बच्चों के मन में न तो संस्थान और उसके तंत्र के प्रति कोई भय हो, न अध्यापकों और अन्य बच्चों के प्रति। संवाद की प्रक्रिया निरंतर चलती रहे - खुले और मुक्त संवाद की। जिस प्रकार शिक्षार्थियों को अपने लिए निजी स्पेस, आज़ादी, लचीलेपन और सम्मान की ज़रूरत होती है, ठीक उसी प्रकार अध्यापकों तथा अन्य सभी हितधारकों को भी। 'अभयदान' की अवधारणा इस व्यवस्था के केंद्र में होगी - इसके आचार और संस्कृति का आधार, और इसका सृजन इस उद्यम में लगे सभी जन मिलजुलकर करेंगे।

जीवन के हर क्षेत्र में हमें समझदार निर्भयता की आवश्यकता होती है पर किसी आम भारतीय स्कूल के परिवेश में इसके महत्व की बात सोचकर देखिए जहाँ शिक्षक और शिक्षार्थी, दोनों के ही लिए निरंतर आतंक रचा जाता रहता है। शारीरिक दंड की बात तो छोड़ ही दीजिए, भय पैदा करने के और भी सैकड़ों तरीक़े हैं। संवाद की कहीं कोई गुंजाइश ही नहीं होती। एकालाप, ज्ञान की जड़ता, रट्टामार पढ़ाई और (समय पड़ने पर बिना जाने-समझे) उसे उगल देना - ये सब हमारे स्कूलों को उद्विग्नता का खौलता कड़ाह बनाते रहते हैं। कोई छात्र हल्का-सा सुझाव भर दे कि किसी जटिल संख्यात्मक सवाल को बोलकर लिखवाने के स्थान पर बोर्ड पर लिख दिया जाए तो उसे गुर्राहट सुनने को मिलती है, 'अब तुम मुझे सिखाओगे कि कैसे पढ़ाना है? अध्यापक कौन है यहाँ?' जहाँ तक गाँधी का सवाल है, वे तो 'नई तालीम' ही नहीं, राजनीतिक विरोधिता में भी संवाद का सहारा लेने के पक्ष में थे। इसलिए शिक्षा में भी परस्पर आदरपूर्ण वार्तालाप का तरीक़ा वापस लाना ज़रूरी है, और भय को दूर भगाना भी। बात यहीं खत्म नहीं हो जाती। दरअसल एडुकेशन और स्कूलिंग के अंतर को समझा जाना चाहिए। यही बात 'नई तालीम' के केन्द्र में है और आगे इसी की चर्चा की जा रही है।

प्रबुद्ध अराजकता- स्व-राजः

'अभयदान' से ही काफी गहरे में 'प्रबुद्ध अराजकता' या 'स्व-राज' की अवधारणा जुड़ी है। गाँधी के अनुसार

> ...राजनीतिक सत्ता लक्ष्य नहीं है बल्कि लोगों को जीवन के हर क्षेत्र में अपनी दशा सुधारने में सक्षम बनाने का माध्यम है। राजनीतिक सत्ता का अर्थ है, राष्ट्र के प्रतिनिधियों के जरिये राष्ट्र के जीवन के नियमन की क्षमता। *यदि राष्ट्र का जीवन इस सीमा तक आदर्श बन जाता है कि अपना नियमन स्वयं कर सके, तो प्रतिनिधियों की आवश्यकता रहेगी ही नहीं। वह स्थिति होगी प्रबुद्ध अराजकता की। ऐसे राज्य में हर व्यक्ति स्वयं अपना शासक होगा। वह अपने को इस प्रकार नियंत्रित करेगा कि उससे अन्य लोगों को कभी भी किसी प्रकार की अड़चन न हो।* (बल मेरी ओर से)। ऐसी आदर्श स्थिति में राजनीतिक सत्ता नहीं होगी क्योंकि राज्य होगा ही नहीं। लेकिन इस आदर्श का यथार्थ जीवन में कभी भी पूर्ण कार्यन्वय नहीं होता। इसीलिए थोरो की प्रसिद्ध उक्ति है कि शासक वही सर्वश्रेष्ठ है जो कम से कम शासन करे।[16]

यहाँ गाँधी राष्ट्र तथा इसके राजकीय उपकरणों के बारे में बात कर रहे हैं। पर यह केंद्रीय विचार भिन्न-भिन्न प्रकार की संस्थाओं के संचालन पर भी भली-भांति लागू हो सकता है। 'नई तालीम' आचार का ऐसा ही रूप गढ़ने की कोशिश कर रही है 'जहाँ हर व्यक्ति अपना (या अपनी) शासक हो'। इसकी आस्था ऐसे स्व-शासी तंत्र में है जो स्वयं अपने शासन (स्व-राज) पर बल देता है। सभी व्यक्तियों से, चाहे वे शिक्षक हों या नहीं, यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने कार्य की, अपनी संस्था की, और अपने पेशेगत विकास की ज़िम्मेदारी उठाएं। गाँधीवादी संस्थाएं, सार रूप में, जिस संस्कृति पर आधारित हैं, उसमें हितधारक अपने कार्य को लेकर इस हद तक उत्साही होते हैं कि हर कार्य में उच्चतम मानक तक पहुँचने की लगन में वे जी-जान से जुटे रहते हैं। 'नई तालीम' के लिए 'बाहरी' पद्धतियों और उनसे जुड़े नियम-विनियमों की अपेक्षा शायद प्रबुद्ध स्व-नियमन का आचार कहीं अधिक सार्थक है। 'नई तालीम' को अपने लिए

16. मो.क.गाँधी, *यंग इंडिया,* 2 जुलाई 1931, पृ0 162।

एक कठिन रास्ता चुनना होगा जिसमें अध्यापकों पर नियत कार्य ऊपर से न थोपे जाएं बल्कि वे स्वयं सोच-समझकर, सचेत भाव से, और स्वेच्छा से काम करें। ऊपरी दबाव भय को जन्म देता है और व्यक्ति को वह कार्य बेगार या मशीनी हरकत जैसा लगने लगता है, जबकि स्वयं चुना हुआ रास्ता उसे स्वामित्व का बोध देता है।

पर क्या हमारे अधिकतर सरकारी या निजी स्कूलों में ऐसा होता है? हम सभी जानते हैं कि हमारे विद्यालय और शिक्षा व्यवस्था, दोनों में ही किस हद तक नौकरशाही की श्रेणीबद्धता और केंद्रीकरण का राज है। अध्यापकों का स्थान तानाशाह प्रबंधकों और उदासीन बाबुओं के नीचे होता है, अध्यापकों की न कोई अपनी आवाज़ होती है न कोई नियत हैसियत। क्या पढ़ाना है, किस शिक्षण सामग्री का उपयोग करना है, बल्कि, किस तरह के टेस्ट लेने हैं - यह सब तय करने में भी आमतौर पर उनकी कोई भूमिका नहीं होती। जिस प्रकार अधिकतर शिक्षार्थियों को पढ़ाई में सोच-विचार और स्वायत्तता का अधिकार नहीं मिलता, ठीक उसी प्रकार अध्यापकों को भी पढ़ाने की प्रक्रिया में इन अधिकारों से वंचित रखा जाता है। क्या ये तमाम हालात *'अध्यापक के जीवंत परिवेश'*[17] (बल मेरी ओर से) के सृजन में कभी सहायक हो सकते हैं? क्या ये ऐसे शिक्षाशास्त्रियों को पैदा कर सकते हैं?

> जिनमें मौलिकता हो, जो सच्ची लगन से प्रेरित हों, जो हर रोज़ यह सोचें और तय करें कि विद्यार्थियों को आज क्या पढ़ाना है। अध्यापक को यह ज्ञान फफूंद से सीले ग्रंथों से नहीं मिल सकता। उन्हें स्वयं अपनी ही अवलोकन तथा सोच-विचार की क्षमता का इस्तेमाल करना होगा और अपने ज्ञान को, किसी शिल्प की मदद से, अपनी ही जुबान से बच्चों तक पहुंचाना होगा।[18]

गाँधी की मान्यता थी कि पाठ्यपुस्तकों पर मशीनी ढंग की निर्भरता 'अध्यापक के जीवंत परिवेश' का नाश कर देती है। वे मानते थे कि 'जो अध्यापक पाठ्यपुस्तकों के सहारे पढ़ाता है, वह विद्यार्थियों में मौलिकता का आधान नहीं कर सकता। वह स्वयं भी पाठ्यपुस्तकों का गुलाम बनकर रह जाता है और उसे मौलिकता का न संयोग मिलता है न सुयोग'।[19] ऐसा नहीं कि वे पाठ्यपुस्तकों को बिल्कुल ही ख़ारिज़ कर रहे थे। बल्कि वे दृढ़ता से इस बात पर बल दे रहे थे कि अध्यापक स्वयं जो ज्ञान अर्जित करें उसे विद्यार्थियों तक तभी पहुँचाएं जब पहले समुचित विचार-विश्लेषण द्वारा उसे वे अपने व्यक्तित्व में ही समाहित कर चुकें। इसके लिए आवश्यक है कि वे अपने जीवन का स्वयं नियमन करें, अपने पर स्वयं शासन करें और व्यवस्था इसके लिए उन्हें यथेष्ट स्वायत्तता दे अर्थात् 'नई तालीम' में (या अन्य भी किसी भी प्रकार की तालीम में) मुख्याध्यापकों और प्रशासकों के लिए लाज़िमी है कि वे अध्यापकों की आवाजों और शिक्षक वाणी का सम्मान करें; उन्हें अध्यापकों में अध्यापकों की अस्मिता का, उनकी क्षमता का, उनके कल्याण का और अध्यापक-नेतृत्व का बोध जगाने के लिए प्रयासरत होना चाहिए। इस परिप्रेक्ष्य में अध्यापकों की पेशागत उन्नति उनके लिए जवाबदारी या प्रोन्नति का माध्यम नहीं होगी। वह माध्यम होगी उस मदद की जो अध्यापकों के अपने पेशे, अपनी जीवनवृत्ति में शिखर तक पहुँचा सकती है।

संप्रदायगत शिक्षा? ना; 'बुनियादी नैतिकता'? हाँः

'नई तालीम' की एक और महत्वपूर्ण विशेषता पर प्रायः ध्यान नहीं दिया जाता, जो दिया जाना चाहिए। इस परियोजना में धार्मिक शिक्षा के लिए कहीं भी कोई भी प्रावधान नहीं था हालाँकि विभिन्न प्रांतों में 'नई तालीम' लागू करने वालों में से कुछ के सांप्रदायिक झुकाव का प्रभाव कहीं-कहीं शायद झलक रहा हो। 1947 के प्रारंभ में ज़ाकिर हुसैन कमिटी

---

17. मो.क.गाँधी, 'टेक्स्ट बुक्स' *हरिजन*, 9 दिसम्बर 1939; कृष्ण कुमार, 'लिस्निंग टू गाँधी', रजनी कुमार, अगिल सेठी एवं शालिनी सिक्का (संपादक), स्कूल, सोसायटी, नेशनः पॉप्युलर एसेज़ इन एजुकेशन (दिल्ली, ओरियन्ट लोंगमेंन, 2005) में भी।

18. भारतन कुमारप्पा (संपादक), मो.क. गाँधी, *बेसिक एडुकेशन* (अहमदाबाद, नवजीवन पब्लिशिंग हाऊज़, 1956), पृ.75।

19. मो.क.गाँधी, टेक्स्ट बुक्स' *हरिजन*, 9 दिसम्बर 1939; कृष्ण कुमार, 'लिस्निंग टू गाँधी', रजनी कुमार, अनिल सेठी एवं शालिनी सिक्का (संपादक), स्कूल, सोसायटी, नेशनः *पॉप्युलर एसेज़ इन एडुकेशन* (दिल्ली, ओरियन्ट लोंगमेंन, 2005) में भी।

ऑन बेसिक नेशनल एडुकेशन के संयोजक डबल्यू. आर्यनायकम को लिखे पत्र में गाँधी ने राज्य के धार्मिक शिक्षा से संलग्न होने के सुझाव की आलोचना की थीः

> मैं नहीं मानता कि राज्य को धार्मिक शिक्षा के मामलों से जुड़ना या उन्हें संभालना चाहिए। मेरा मानना है कि धार्मिक शिक्षा केवल धार्मिक संस्थाओं की ही चिंता का विषय होना चाहिए। धर्म और नैतिकता का घालमेल मत कीजिए। मैं मानता हूँ कि बुनियादी नैतिकता (का तत्व) सभी धर्मों में समान है। बुनियादी नैतिकता की शिक्षा देना राज्य का प्रकार्य है। धर्म कहने से मेरे दिमाग में बुनियादी नैतिकता नहीं, बल्कि सांप्रदायिकता (Denominationalism) कहलाने वाली प्रवृत्ति की बात आती है। राज्याश्रित धर्म और राज्य से जुड़े चर्च के कारण हम काफ़ी कष्ट झेल चुके हैं। जो भी समाज या समूह धर्म की रक्षा के लिए पूर्णतः या अंशतः राजकीय सहायता पर निर्भर होते हैं, वे 'धर्म' के लायक ही नहीं होते, बल्कि कहना चाहिए कि उनका कोई धर्म होता ही नहीं।[20]

इस कथन पर ध्यान देना ज़रूरी है क्योंकि बड़ी आसानी से यह मान लिया जाता है कि गाँधी धर्म को राजनीति से अलग रखने के सिद्धांत के हामी नहीं थे। जीवन भर वे हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए प्रतिबद्ध रहे और सांप्रदायिकता विरोधी गतिविधियों में भी वे जी-जान से जुटे रहते थे इन बातों को 'पश्चिमी शैली के' धर्म निरपेक्षता के सिद्धांतों की अपेक्षा सर्व-धर्म सम्भाव की प्रवृत्ति से जोड़ा जाता है। गाँधी की प्रार्थना सभाएं और बार-बार उनका यह उल्लेख करना कि उनकी राजनीति धार्मिक चेतना से प्रेरित विवेक से अनुप्राणित रहती है, इस तरह के निष्कर्ष को और पुष्ट करता है। लेकिन हमें याद रखना चाहिए कि उनकी समानुभूति और समावेश की भावना दार्शनिक जॉन लॉक के इस सिद्धांत से और सुदृढ़ हुई थी कि राज्य को निजी आस्थाओं के क्षेत्र में दख़लंदाजी नहीं करनी चाहिए - यह विशुद्ध व्यक्तिगत मामला है। धार्मिक विचार-विमर्श की बात गाँधी सार्वजनिक मंच पर लाए - लेकिन इसलिए कि उसके माध्यम से 'बुनियादी नैतिकता', मैत्री भाव, सामंजस्य और सहयोगिता का प्रसार किया जा सके। जब भी और जहाँ भी उन्हें महसूस हुआ कि जनता के बीच धर्म के उल्लेख से संकीर्ण भावनाएँ, झगड़े या हिंसा भड़क सकते हैं तो उन्होंने उसके ऐसे उपयोग की निंदा की और राज-कार्य तथा धर्म के क्षेत्रों को पूरी तरह अलग-अलग रखने के पक्ष में तर्क दिए।[21]

एडुकेशन और स्कूलिंगः

भारत के प्रमुख शिक्षाविदों में से एक, मार्जरि साइक्स, गाँधी और रवीन्द्रनाथ ठाकुर, दोनों की ही शिष्या रह चुकी थीं। वे 'एडुकेशन' और 'स्कूलिंग' को भिन्न मानती हैं दोनों शब्दों की अर्थछाया में उन्हें इतना अंतर नज़र आता है कि उनके अनुसार शिक्षा का अर्थ डी-स्कूलिंग भी हो सकता है। उनकी व्याख्या है कि शिक्षा का शाब्दिक अर्थ ही है, 'बाहर को ले चलना':

> मेरी आँखों में छवि उभरती है कि कोई बड़ी नरमी से बच्चे का हाथ थामे उसी की रफ़्तार से उसके साथ-साथ चलता है, उसकी अपनी प्रकृति से उपजी अंतःप्रेरणाओं के अनुकूल उसके नूतन विकास को नए क्षेत्रों में उसके अभियानों को प्रोत्साहित करते हुए। इसके विपरीत जब हम 'स्कूलिंग' का ज़िक्र करते हैं तो यह अहसास होता है कि उसे कुछ ऐसा करने के लिए अनुकूलित किया गया है जो वह अपनी सामान्य प्रकृति के अंतर्गत नहीं करेगा - उदाहरण के लिए, बैले नृत्य की कुछ मुद्राएं और गतियां। मेरा कहना यह नहीं है कि 'एजुकेशन' और

---

20. इ.डबल्यू आर्यनायकम का गाँधी को खत, 21 फरवरी 1947, *कलेक्टेड वर्कस ऑफ महात्मा गाँधी*, (दिल्ली, 1999), जिल्द 94, पृ. 19।

21. यह चर्चा पहले पहल अनिल सेठी, 'एडुकेशन फॉर लाईफ थ्रू लाईफ : ए गाँधियन पेराडाईम' - *क्रिस्टोफ़र विन्च, फ़र्स्ट गहात्मा गाँधी मेगोरियल लेक्चर-2007* (दिल्ली एन.सी.ई.आर.टी. 2007), पृ. 9-10, में छपी थी।

'स्कूलिंग' परस्पर विरोधी हैं, न मैं यह कह रही हूँ कि आप इन दोनों को एक साथ नहीं अपना सकते। पर यह मैं कह रही हूँ कि उनमें अंतर है और इस अंतर की पहचान हमें होनी चाहिए।[22]

साइक्स का दृढ़ विश्वास था कि अध्यापकों की पहली चिंता एडुकेशन होनी चाहिए, स्कूलिंग नहीं। वे अध्यापक की उपमा माली (किंडरगार्टन का शब्दार्थ ही है बच्चों का बगीचा या बालवाड़ी) या नर्स (स्कूल नर्सरी ही होते हैं) से देती थीं। अपने पौधों की देखभाल में कुशल माली और रोगियों की देखभाल में समझदार नर्स की ही तरह बुद्धिमान अध्यापक को भी इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कब बच्चों को अपने मन के अनुसार चलने को छोड़ दें ताकि वे अपने तरीके से पनप सकें, 'जो चाहें कर सकें', जबकि अध्यापक परे हटकर उनका ख़्याल रख सकें। 'उन्हें बच्चों को समझ पाने का ख़्याल हो, दख़लंदाजी का नहीं'[23] अध्यापक बच्चों को अपने आप बढ़ने की गुंजाइश देने के लिए पीछे ज़रूर हटें, लेकिन उनमें मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति - प्रश्न पूछने की आदत को संवारने में मदद करने के लिए उन्हें तत्पर भी रहना चाहिए। उन्हें ही बच्चों में जिज्ञासा की प्रवृत्ति जगानी चाहिए। बच्चों को सवाल खड़े करके उनके हल ढूंढ़ने में मजा आता है और अध्यापकों को उनसे यह बात सीखनी चाहिए। इसलिए 'नई तालीम' वाले स्कूलों को आरंभ से ही पर्याप्त स्कूल-मुक्त यानि कि डी-स्कूल वाली स्थिति में रहना चाहिए। यह तनी हुई रस्सी पर संतुलन साधने जैसा ही कठिन - बल्कि दुष्कर कार्य है। लेकिन इस विशेषांक की संपादक के स्वप्नदर्शी, परिवर्तनकामी परामर्शदाता सुजित सिन्हा तो शायद स्कूलों को पूरी तरह विसर्जित करके भविष्य में विद्यालय विहीन 'नई तालीम' के आयोजन पर विचार करना चाहते हैं। उनका यह प्रतिमान शायद गाँधी के शिक्षा संबंधी विचारों को समस्त संभावनाओं के साथ फलीभूत कर सके।

निष्कर्ष

इस निबंध में 'नई तालीम' के सामयिक तथा विचारात्मक संदर्भों के अन्वेषण की कोशिश की गई है। इसमें गाँधी की विश्वदृष्टि में निहित विचारों को 'नई तालीम' की चर्चा में शामिल किया गया है। उनमें कई बड़ी महत्वपूर्ण संकल्पनाएं हैं जिन्हें 'नई तालीम' की व्याख्या करते समय या तो भुला ही दिया जाता है या मामूली उल्लेख करके छोड़ दिया जाता है। मार्टिन ग्रीन तथा हेनरी फ़ैग 'निर्बंध संभावना' (Absolute Possibility) की बात करते हैं। इसके अनुसार कोई एक अकेला इंसान या छोटा-सा समूह भी जीवन में बड़ा भारी बदलाव ला सकता है। कभी-कभी तो यह बदलाव जीवन को बिल्कुल ही नए, अब तक अछूते ऐसे परिप्रेक्ष्यों तक ले जाता है जिनकी कल्पना तक लोगों की सोच से परे थी।[24] जब महात्मा जी सत्य तथा जीवन के साथ प्रयोगों की बात करते थे तो उनका आशय यही था। यह विशेषांक 'नई तालीम' से जुड़े ऐसे प्रयोगों की एक झलक देने का प्रयास है। ◆

लेखक परिचय : कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय, कैम्ब्रिज से इतिहास विषय में डॉक्ट्रेट की उपाधि प्राप्त की, वर्षों तक एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली में इतिहास के प्राध्यापक रहे हैं। यहाँ रहते हुए आपने एन.सी.एफ. 2005 के आलोक में इतिहास की पाठ्यपुस्तकों के निर्माण में महती भूमिका निभाई। वर्तमान में पोख़रामा फ़ाउडेशन, हैदराबाद में सीईओ के पद पर कार्यरत हैं।

संपर्क : anil@pokhramafoundation.org

---

22. मार्जरि साइक्स, 'कीनोट एड्रैस', कृष्ण कुमार (संपादक), *डिमॉक्रेसी एण्ड एडुकेशन इन इन्डिया* (दिल्ली, साउथ एशिया बुक्स 1993), पृ. xxiv।

23. मार्जरि साइक्स, 'कीनोट एड्रैस', कृष्ण कुमार (संपादक), *डेमॉक्रेसी एंड एडुकेशन इन इन्डिया* (दिल्ली, साउथ एशिया बुक्स 1993), पृ. xxiv।

24. मार्टिन ग्रीन, गाँधीः *वॉयस ऑफ़ ए न्यू-एज रेवोल्यूशन* (न्यू यॉर्क, कॅन्टीन्यूअम, 1993), पृ. 15-20; एवं हेनरी फ़ैग, *बैक टू द सोर्सेजः ए स्टडी ऑफ़ गाँधीज़ बेसिक एडुकेशन* (दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट 2002), पृ. xx। Absolute Possiblity (निर्बन्ध संभावना) वाला मुहावरा फ़ैग का गढ़ा हुआ है।